International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 756-757

पूर्वमध्यकाल में व्यापार का बदलता स्वरूप

उमेश कुमार
प्राध्यापक इतिहास, रा0व0मा0वि0 जसराणा सोनीपत, हरियाणा, भारत।

इेजतंबज
पूर्व मध्यकाल में वणिक समुदाय तत्कालीन समाज की महत्वपूर्ण कडी था । वास्तव में व्यापार –वाणिज्य में संलग्न इस समुदाय ने न केवल आर्थिक अपितु सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को भी प्रभावित किया । वणिक समुदाय ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों के द्वारा तत्कालीन सामन्तीय व्यवस्क्था के ढांचे पर प्रहार करने का कार्य किया । वणिक समुदाय द्वारा दिए गए दानों से एक ओर जहां उनकी आर्थिक सम्पन्नता के बारे में जानकारी मिलती है वहीं यह भी पता चलता है कि वे किसी उच्च शक्ति के अधीन नहीं थे ।

मूल शब्द : पूर्व मध्यकाल, व्यापार, सामाजिक एवं राजनीतिक।

प्रस्तावना

पूर्व मध्यकाल में हमें व्यापार का जो प्राचीन स्वरूप था वह इस काल में बदलता दिखाई दे रहा है । इस समय सिक्कों का कम मिलना इस ओर इशारा करता है कि इस काल में व्यापार में कमी आई परन्तु कुछ समय उपरान्त ही हमें कई स्रोंतों से व्यापार की प्रगति की भी जानकारी मिलती है । इस समय भू–अनुदान की बढती हुई संख्या के कारण व्यापार पर स्थानीय शक्तियों का प्रभाव दिखाई देने लगा । इस प्रकार व्यापार का धीरे–धीरे सामन्तीकरण हो गया । उपरी गंगा घाटी के पश्चिमी हिस्सों में 9वी सदी के अंतिम दशकों व दसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में व्यापार में गति दिखाई दी । ब्राह्मणों को तो भूदान– देने की प्रथा काफी पहले से ही चली आ रही थी परन्तु 7वीं शताब्दी तक आते–आते भूमि राज्य के अधिकारियों को उनकी सेवाओं के बदले दी जाने लगी[1]।

इस काल में हम देखते हैं कि व्यापार केवल शाही उपयोग की वस्तुओं तक ही सीमित था । मेघातिथि के अनुसार 'राज्य में जिन वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्माण होता है उन पर अमूक राज्य के शासक का एकाधिकार है[2]। वह आगे लिखता है कि यदि कोई व्यापारी लालचवश इन वस्तुओं का निर्यात करता है तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर लेनी चाहिए । मिताक्षरा के अनुसार 'आभूषण, कीमती रत्न आदि मूल्यवान वस्तुओं को बेचने की मनाही थी क्योंकि ये वस्तुएं केवल राजा के उपयोग के लिए नियत थी[3]। 9वीं सदी के पेहोवा अभिलेख में कुछ घोडा व्यापारियों द्वारा मंदिर को दिए जाने वाले कुछ करों का जिक्र है[4]। इससे यह आभास होता है कि व्यापारी किसी के अधीन न होकर स्वतंत्र रूप से व्यापार करते थे परन्तु यह सर्वमान्य नहीं माना जा सकता ।

इस काल में उपहारों के आपसी आदान–प्रदान के रूप में भी व्यापार का चलन था । सामन्तीय समाज में घटित होने वाली यह एक सामान्य प्रक्रिया थी । आसाम के शासक भास्कर वर्मन ने सम्राट हर्षवर्धन को उपहार के तौर पर 26 वस्तुएं भेजी थी जिनमें कीमती रत्नजडित स्वर्णभूषण, रेशमी वस्त्र जैसी वस्तुएं शामिल थी[5]। भारतीय शासकों ने उपहार के तौर पर कीमती वस्तुएं विदेशी शासकों को भी भेजी । 644 ई0 में हर्ष ने एक प्रतिनिधि मण्डल चीन भेजा । हर्ष ने कीमती उपहार भी इसके माध्यम से चीनी शासकों को भेजे[6]।

इन उपहारों के निर्माण में दक्ष कारीगरों की आवश्यकता होती थी । शासकों द्वारा इन कारीगरों को विभिन्न स्थानों से अपने राज्य में बुलाया जाता था । प्रभाकरवर्धन ने राजश्री के विवाहोत्सव पर देश के विभिन्न भागों से कारीगरों को बुलाया था[7]।

इन कारीगरों को पारितोषिक अथवा वेतन किस रूप में दिया जाता था, इस विषय पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । पूर्व मध्यकाल में काम के बदले वेतन की बजाय भूमि देना एक सामान्य प्रक्रिया थी । संभवतः कारीगरों को भी इसी प्रकार वेतन दिया जाता था । बंगाल के शासक 'विजयसेन' के देवपाडा अभिलेख' में ग्यारहवीं सदी में शूलपाणि नामक शिल्पाध्यक्ष को एक उपाधि से सुशोभित किए जाने का जिक्र है[8]। आम तौर पर जब किसी अधिकारी को सामन्त बनाया जाता था तो उसे भूमिखण्ड व उपाधि से सुशोभित किया जाता था। शूलपाणि को भी उपाधि के साथ भूमिखण्ड दिया गया था ।

कुछ अवसरों पर शासकों ने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से व्यापारिक गतिविधियों को क्षति पहुंचाई । मेघातिथि के अनुसार "एक व्यापारी को जंगल से गुजरते समय न केवल डाकुओं अपितु राजाओं से भी सावधान रहना चाहिए[9]। पुराणों में भी संदर्भ मिलते हैं कि राजकुमार कर एकत्रित करने के बहाने व्यापारियों की सम्पत्तियों को लूटेंगे[10]। भविष्यत कथा में एक मां अपने पुत्र को व्यापारियों के कारवां में जाने से रोकने के लिए हतोत्साहित करती है क्योंकि वहां युद्ध होने का भय है[11]। इन परिस्थितियों में व्यापार का सुचारू रूप से चलना निश्चित तौर पर सन्देहजनक था । राज्यों का आकार छोटा होने के कारण व्यापारियों को जगह–जगह चुंगी कर देना पडता था ।

इन परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था का प्रभावित होना स्वाभाविक था । पूर्व मध्यकाल में व्यापार का स्तर सीमित रह गया था । विदेशी व्यापार केवल अरबों के साथ था । आतंरिक व्यापार केवल राजाओं व सामन्तों की निजी जरूरतों की पूर्ति तक ही सिमट कर रह गया । अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता व स्थानीयता जैसे तत्व जोर पकडने लगे । इस काल में बडे पैमाने पर व्यापार के कोई भी साहित्यिक अथवा पुरातात्विक साक्ष्य नहीं मिलते । जो भी थोडा बहुत व्यापार था वह नमक धातु आदि वस्तुओं तक सीमित था क्योंकि ये वस्तुएं स्थानीय तौर पर हर जगह उपलब्ध नहीं होती थी[12]।

गुप्त काल में गांवों के दान मे दिए जाने के हमें अनेक उल्लेख मिलते हैं[13]। शहरों से जो कर इक्ट्ठा किया जाता था उसको भी

दान में दिया जाता था । शहरों को भी संभवतः प्रशासनिक व सैन्य अधिकारियों को दिया जाता रहा होगा । यह एक तरह से उनकी सेवाओं के लिए वेतन की जगह दिया जाता था । युवान च्वांग हर्ष के काल में अधिकारियों के वेतन के बारे में लिखता है कि राजकीय भूमि का एक चौथाई भाग मंत्रियों के वेतन के रूप में नियत किया गया था[14]। इसके साथ ही कुछ शहरों को भी वेतन के रूप मे दिया गया था । 11वीं सदी तक आते–आते यह प्रथा बडे पैमाने पर फैल गई । 'भोज–परमार' शासक ने अपने एक सामन्त यशोवर्मन को नासिक के उतर–पश्चिम में स्थित सेल्यूक नामक आधा गांव दिया था[15]।

पूर्व मध्यकाल में बाजार भी धार्मिक अनुदान के रूप में दिए गए जिसका व्यापार पर विपरीत प्रभाव पडा । पाल शासक 'धर्मपाल' ने एक मंदिर को चार गांव उनके बाजार (हटटिका) दान में दिए गए थे[16]। गांव को दान में दिए जाने का भी सीधा अर्थ गांव की समस्त आर्थिक गतिविधियों पर मंदिर का नियंत्रण होना था । इसी प्रकार बाजार को भी दान मे दिए जाने पर मंदिर का व्यापार पर भी नियंत्रण होने लगा । पूर्वमध्यकाल में उद्योग चूंकि अपने शैशवकाल में थे इसलिए बाजारों को दान में दिए जाने से वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण समान रूप से प्रभावित हुआ ।

इसी काल मे पहली बार उद्योग व व्यापार के द्वारा एकत्रित किए गए राजस्व करों को भी दान के रूप में दिया गया । कांगडा (हिमाचलप्रदेश) के 'लक्ष्मण चन्द्र' नामक सामन्तीय शासक ने अपने राजस्व कर से रोज छः द्रम एक मंदिर को देने की घोषणा की, जिसे दो धनी व्यापारियों ने बनवाया था[17]। 11वीं सदी मे 'परमार' शासकों के सामन्त यशोवर्मन ने नासिक के एक जैन मंदिर को 'दो तेल मिल' 'चौदह दुकानें' व चौदह द्रम नकद राशि दान में दी थी[18]।

इस सारे आर्थिक परिदृश्य में जो त्रासदी थी, वह यह थी कि व्यापार के जिस लाभांश को राज्य–कोष में जाना चाहिए था अथवा व्यापार के पुर्नविकास में लगाया जाना चाहिए था, सारा धन मंदिरों एवं मठों के हाथों में जाता रहा था । मंदिरों मठों को दान में प्राप्त हुए धन को पुनः व्यापारिक एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में लगाया जा सकता था परन्तु हमें पूर्व मध्यकाल में ऐसा कोई उदाहरण देखने को नहीं मिलता । इस काल में मंदिरों–मठों ने व्यापारियों का शोषण किया व उनकी गतिविधियों को निजी आवश्यकता पूर्ति तक सीमित कर दिया । ऐसा प्रतीत होता है कि पुजारी वर्ग सामन्तीय शासकों से किसी भी तरह से पीछे नही था । वे सामन्तीय शासकों की भान्ति ऐशो आराम का जीवन व्यतीत करते थे । 'आहाड प्रस्तर अभिलेख' में मंदिर के द्वारा भूमि एवं आवास–गृह खरीदे जाने का उल्लेख मिलता है[19]। इस सम्पत्ति को किराये पर दिया गया । इससे मिलने वाली राशि को मंदिर की देखरेख में खर्च किए जाने की व्यवस्था की गई । यह धन राशि का सही निवेश नहीं था । यदि इस धनराशि को व्यापार में लगाया जाता तो निश्चित तौर पर अधिक लाभ मिलता ।

उत्तर भारत के पश्चिमी क्षेत्रों में व्यापार की वस्तु– स्थिति अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कुछ अच्छी कही जा सकती थी । 9वीं शताब्दी के अंतिम दशकों व 10वी शताब्दी के आरम्भिक दशकों में कन्नौज एवं अहिच्छत्रा जैसे स्थानों पर व्यापार फल फूल रहा था । व्यापारिक विकास के इस दौर को 'गोपालगिरि' 'सियादोनी' 'पृथुदक' (करनाल) आहाड (बुलन्द शहर) जैसे शहरों के विकास के साथ चिन्हित किया जा सकता है । इन स्थानों से प्राप्त अभिलेखों में उन धनी व्यापारियों का जिक्र है जिन्होंने अपनी आय से भी बडे–बडे अनुदान दिए थे । इन अभिलेखों मे मुख्य राजमार्गों, दुकानों, बाजारों,करों, चुंगी घरों व मुद्राओं का जिक्र है जो कि उन्नत अर्थव्यवस्था का द्योतक है । यद्यपि हमें व्यापारिक साजो–सामान की सीधी खरीद फरोख्त के उदाहरण नहीं मिलते तथापि इन क्षेत्रों मे व्यापारियों के निवास स्थल होने के कारण यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों में अद्यिशेष पर्याप्त मात्रा में पहुंचता था । आर्थिक क्रिया कलाप के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी एक दूसरे से मिलते थे । 'पेहोवा' मे अश्व–व्यापारियों का इक्ट्ठा होना इसी तरह के तथ्य को उद्घाटित करता है[20]।

निष्कर्षः–इस प्रकार इन व्यापारिक गतिविधियों ने सामन्तीय अर्थव्यवस्था के ढांचे पर प्रहार करने का कार्य किया । व्यापारियों द्वारा दिए गए दानो से जहां एक ओर उनकी आर्थिक सम्पन्नता के विषय में जानकारी मिलती है, वहीं यह भी पता चलता है कि वे किसी उच्च शक्ति के अधीन नहीं थे । इन व्यापारियों ने जो धन मंदिरों व धार्मिक कार्यों हेतु दान दिया, वह व्यापार के द्वारा ही अर्जित किया गया था । उनका व्यापार न केवल फल–फूल रहा था बल्कि उन्हें अच्छा लाभ भी दे रहा था । दुर्भाग्य से हमें यह नहीं पता कि उस काल में व्यापारी लाभ का कितना अंश दान में दे रहे थे और कितना अपने व्यापार के विकास में लगा रहे थे ।

संदर्भ सूची

1. के 0 सी श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ0– 522
2. मेघातिथि आन मनु, VIII पृ0– 399
3. मिताक्षरा आन याज्ञवलक्य II पृ0 – 261
4. एपिग्राफिया इण्डिका I पृ0– 187–8
5. के0 सी श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ0 476
6. के0 सी श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ0 484
7. हर्षचरित IV पृ0– 236
8. एपिग्राफिया इण्डिका I पृ0– 311
9. मेघातिथि आन मनु, VII पृ0– 127
10. वायुपुराण VI पृ0–34
11. भविष्यत कथा पृ0– 17
12. लल्लन जी गोपाल, द इकोनोमी लाइफ ऑफ नादर्न इण्डिया (700-1200AD) पृ0–90
13. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ0– 172
14. के0 सी श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ0 488
15. एपिग्राफिया इण्डिका XIX पृ0– 72
16. एपिग्राफिया इण्डिका IV पृ0–250
17. एपिग्राफिया इण्डिका पृ0–114
18. एपिग्राफिया इण्डिका XIX पृ0–72
19. एपिग्राफिया इण्डिका XIX पृ0–58–62
20. एपिग्राफिया इण्डिका I पृ0–187?